भगवत् कृपा

THE DIVINE GRACE

महाप्रभु स्वामिनारायण प्रणीत सनातन, सचेतन और सक्रिय गुणातीतज्ञान का अनुशीलन करने वाली मासिक सत्संगपत्रिका

वर्ष-16, अंक-6 शनिवार, 26 जून' 93	सम्पादक : साधु मुकुंदजीवनदास गुरु ज्ञानजीवनदासजी जून, 1993	वार्षिक चन्दा-30.00 प्रति अंक : 3.00

अमृतसेतु

[हम सब के प्यारे प्रभु प.पू. काकाजी का अमृत महोत्सव (75वीं जन्म जयंती) का महामंगलकारी वर्ष–'1993' चल रहा है.... हमारे भाग्य का तो पार नहीं कि रोम-रोम में भगवान प्रकटाये परम पवित्र पुरूष गरजू बनकर हमारे जीवन में आ गये....हमें अपनी गोद दी और उनके संग जीवन जीये !!...कैसे ऋण चुका भी पायेंगे इनका?

पू. काकाजी के निम्नलिखित दो आंशिक पत्रों से ही स्पष्ट होता है कि हमें कैसी भव्य प्राप्ति हुई है....और इनके संबंध में आने के बाद हमें क्या करना है? और इससे भी अधिक–कैसी कल्पना से परे की प्रीति होगी हम सबसे उनकी? कितना अपना माना होगा हमें–जो ऐसा सचोट व स्पष्ट मार्गदर्शन हमारे लिए खुला रख दिया कि आज भी यदि करने लग जायें तो परम सुखी हो जायें व देह रहते हुए अक्षरधाम का सुख-शांति, आनंद प्राप्त करें.....

आईये, हम सब मिलकर इस रहस्य का मनन चिंतन करके समझने का प्रयास करें। इन वाक्यों को अपने जीवन का आधार बना लें ताकि 'अमृत महोत्सव' तक में प्रत्यक्ष गुणातीत स्वरूपों हमारी सब कसर टाल कर हमारी साधना की पूर्णाहुति करा देवें....यही अंतर की आरजु.....]

❑ .....मुझे तो
पू.बापा ने अनुपम ही पसंदगी में चुना था,
सो,
सर्वांगी विकास में और सर्वोच्च ब्रह्मीस्थिति में
तकलीफें बाधारूप नहीं बनी और
मूल रहस्यों गौण नहीं हुए–
अक्षरपुरुषोत्तम उपासना
व
जीव को ब्रह्मरूप करके परब्रह्म में जोड़ने के मूल उद्देश्य में सहज स्थिति व सिद्धि पू. बापा ने दे दी.....
जिससे
सभी भूमिकाओं में अखंड शांति और आनंद रहा....

स्वीट्जरलैंड, 15-7-'77

❑ ❑ ❑

❑ **गुरु** बहुत होते हैं,
परन्तु
❑❑ **सद्गुरु** कम।
और
सच्चा सद्गुरु तो शायद ही मिले
और
मिल भी जाये तो–
उसके जोग में रहना कठिन।
यदि रहें भी, तो–
अखंड दिव्यभाव रखना कठिन।
वह भी रखें तो–
स्वभाव टाल कर टिकना कठिन।
वह भी कर लें तो–
उसकी अनुवृत्ति में रहना कठिन।
वह भी हो जाये, तो–
उसके अभिप्राय की भक्ति करनी कठिन।
और
वह भी हो, पर–
भिन्न-भिन्न प्रकार के–भिन्न रुचि वाले मुक्तों के साथ
दिव्यभाव ही रखकर–साधुता रखकर
सरलता वर्तना–सर्वोत्तम स्थिति है।
और तब–
पूर्णता ही प्रगटे
और
Final stage सिद्ध हुई मानी जाये।
तो,
यह **एकता व समता** दृढ़ करते जाना।
दूसरा क्या कर रहा है?
वह
जरा भी नज़र में नहीं लेना।
हमें
प्रभु को याद करके
उन्हें ही सब करने देना है।

शिकागो, 12-5-'-77

–प.पू. काकाजी महाराज

❑ शब्द द्वारा परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान का उपदेश करे वह गुरु।
❑❑ सभी में परमात्मा का दर्शन कराये वह **सद्गुरु**।

महामंगलकारी दिन.....गुरुपूर्णिमा

जब होवत हरि कृपा, तब मिलते सच्चे संत
जब मिलते सच्चे संत, तब मिलता सुख-शांति-समाधान
जब होती संत कृपा, तब मिलती शक्ति, अखंड आनन्द

—प.पू. काकाजी महाराज

भारतीय संस्कृति में आदि-अनादि काल से 'गुरु' का स्थान सर्वोत्तम है। दूसरी ओर अनादिकाल से ही हरेक जीव को मनधारा ही करने का सहज स्वभाव है। जीवमात्र प्रकृति के अधीन बोलता है, चलता है, खाता है, पीता है, सेवा करता है... अहम् की वृत्ति पर ही सबका चलना-फिरना है, इसलिए ही करोड़ों जन्मों से सब दुःखी ही है.... परन्तु, यदि हरेक व्यक्ति शुद्ध हृदय के भाव से प्रेम-भक्ति और श्रद्धापूर्वक सद्गुरु की शरणागति-स्वीकारे तो उस पर संसार के दुःख व भय हावी ना हो सकें। उसे जन्म-मरण का भय दूर हो जाये। मुमुक्षु को आलोक तथा परलोक संबंधी ज्ञान पाने गुरु की आवश्यकता है ही। जैसे देह की खुराक अन्न-जल है वैसे ही आत्मा की खुराक सत्पुरुष की कथा वार्ता, ध्यान, भजन है। इसलिए स्वयं स्वामिनारायण भगवान ने मुमुक्षुओं के लिए आदर्श रखने सद्. रामानंदस्वामी को 'गुरु' बनाया और स्वयं पुरुषोत्तमनारायण का स्वरूप होते हुए भी उनकी आज्ञा के मुताबिक वर्ते.....

श्री स्वामिनारायम भगवान का संकल्प है कि सबको अखंड अक्षरधाम में रहते करना है। इसलिए उन्होंने अक्षररूप साधु को पृथ्वी पर अखंड रखे और ऐसे संत के साथ जो सहृद्यी बने, संबंध वालों में सुहृद्भाव रखकर अभिप्राय के मुताबिक की भक्ति करे तो उस संत के संकल्प से हृदयाकाश में सहज ही प्रभु का प्रागट्य होता है। फिर वह सेवक सहज आनंद में रहता हो जाये और सुखी-सुखी हो जाये। ऐसा संतमार्ग—सनातन मार्ग मानव जीवन के लिए अनिवार्य बनता ही है।

हजारों वर्षो के आध्यात्मिक इतिहास के पन्नों पर अवतारों ने, पैगम्बरों ने, आत्मदर्शियों, सिद्धों और सद्. गुरुओं ने सभी सम्प्रदाय के साररूप एक ही बात लिखी है कि वासना का क्षय और स्वभाव का परिवर्तन कैसे हो? इस प्रश्न के समाधान के लिए कई लोग कर्मयोगी बनें, कितने भक्तियोगी बनें, कितने ज्ञानयोगी बनें, कितने सांख्ययोगी बनें। कितनों ने तपयोगी, राजयोगी, हठयोगी बनकर सुखी होने के लिए सम्पूर्ण प्रयत्न किए, परन्तु वासना व स्वभाव की जड़ पूर्ण रूप से निकल ना सकी।

भगवान स्वामिनारायण ने धरती पर आकर अद्भुत करुणा करी कि भगवान रखे सच्चे संत के प्रति सद्भाव रखकर यदि उसके साथ एक आत्मीय संबंध दृढ़ कर लोगे तो कोटिकल्प तक ना टलें ऐसी वासना और स्वभाव, अहम् की वृत्तियों का प्रलय होते देर नहीं लगेगी।

सच ! सच्चा गुरु शिष्य के लिए 'माँ' बनता है जैसे गाय अपने बछड़े को देखकर अपना दूध तुरंत छोड़ देती है वैसे ही सच्चा गुरु अपने जैसे ही गुण शिष्य को देना चाहता है। शिष्य के अज्ञानरूपी अंधकार को दूर करके आत्मा-परमात्मा ज्ञानरूपी प्रकाश की ज्योति प्रगट करना—सच्चे गुरु का यही

एकमात्र ध्येय होता है जैसे कुम्हार घड़े को सुन्दर आकार देते हुए बाहर से एक हाथ से चोट मारता है और दूसरे हाथ को धड़े के अन्दर रखकर चोट को सहन करने का अखंड सहारा देता है वैसे ही गुरु खुद के शिष्य में रही सूक्ष्म कमियों को ढूंढ-ढूंढ कर चाहे चोट लगाकर भी दूर करता है और उसे पूर्णरूप से पात्र बनाता है.....शुद्धिकरण के दौरान संकल्प-विकल्पों का सामना करने के लिए खुद का आंतरिक प्रेम देकर भीतर से बल भी देता है। हमें भी ऐसे ही समर्थ गुरुओं की प्राप्ति हुई है..... गुणातीत ज्ञान में तो 'गुरु' ही शिष्य के व्यवहारिक व आत्मिक उत्थान के लिए दिन-रात अविरत परिश्रम करता है। हमारे गुरु गुणातीत ने हमें तीन देह, तीन गुण से पर करके अनन्त जन्म के पाप और कर्म को जलाकर प्रभु की मूर्ति रखने का संकल्प किया है.....ऐसा संकल्प समर्थ गुरु के बिना कौन कर सकता है? हमारे आत्यंतिक कल्याण की जवाबदारी ली है।

बस ! हेत और महिमा सहित यदि सत्पुरुष में आत्मबुद्धि हो तो तनिक भी कभी शंका नहीं हो सकती। नाई के पास हजामत कराने बैठते हैं तो नाई को एक विश्वास से माथा सौंपते हैं.....उसमें कभी विचार या शंका नहीं होती कि हजामत करते हुए वह उस्तरे वगैरा से जख्म तो नहीं कर देगा? और बड़े पुरुष तो अनंत जन्मों के कर्म को जलाकर भगवान की सुखकंद मूर्ति बक्षिश देना चाहते हैं तो उनमें क्यों विश्वास व लगाव नहीं रख पाते? सो, बड़े पुरुष के प्रति यदि जरा भी मनुष्यभाव का संकल्प उठने लगे तो उसी समय तुरन्त ही उस विचार को ठुकराकर ज्ञानरूपी जल से स्नान कर लेना चाहिए। गुरु तो अपनी नाव है। वही हमें भवसागर से पार उतारता है, माया से पर करता है।

फिर ऐसे समर्थ गुरु के मिलने के बाद शिष्यों को क्या करना? उनकी स्मृति करनी, मनन् द्वारा उसका संग करना और गुरु को आत्मा में धारना कि मेरी पल-पल की क्रिया मेरा अन्तर्यामी, सर्वत्र विराजमान गुरु मुझे देख रहा है.....गुरु ही आत्मा है ! वही परमात्मा ! वही ईष्टदेव ! वही सुख की मूर्ति है ! वही साक्षात् है.....ऐसा भाव यदि शिष्य निरन्तर रखता है तो गुरु ही सब कुछ करने की भीतर से प्रेरणा देते रहते हैं....

कोटि कल्प तक सिद्ध ना हो सके ऐसा अनुपम दिव्य जीवन गुणातीत पुरुष सब का चाहते हैं। सरलता, साधुता, सुहृद्भाव, निर्दोषता, पवित्रता, गुलामभाव आदि कल्याणकारी गुण त्रिकाल में भी साध्य नहीं है। केवल सत्पुरुष 'गुरु' की कृपा से ही संभव है और वह 'गुरुकृपा' पाने मू.अ.मू. गुणातीतानंदस्वामी ने करामात बताई है कि 'बस ! केवल महाराज की तरफ नज़र रखो– महाराज यानी उनको अखंड धारे प्रगट स्वरूप की ओर नज़र रखो। वे कहें उतनी ही क्रिया करो, उनके जँचते में और अभिप्राय के मुताबिक सेवा करो।'

अहो ! मू.अ.मू. गुणातीतानंदस्वामी द्वारा बताई करामात का तो आज सम्पूर्ण गुणातीत समाज के सम्मुख एक स्पष्ट उदाहरण है, **प.पू. काकाजी**..... ! सच, गुरुभक्ति अदा करने में तो प.पू. काकाजी ने कमाल का आदर्श रखा। सही अर्थ में 'सेवक' की चरम पराकाष्ठा.....गुरु के प्रति total कल्पना से पर का समर्पण.....गुरु शिष्य पर एक अनोखे भरोसे से अधिकार जमा सके यही तो शिष्य के जीवन की सार्थकता है न?

गुणातीत ज्योत के जून'93 अंक में निकली

पत्रिका में प.पू. काकाजी के 'अजोड़ सेवकभाव' के बारे दो प्रसंग दिल और दिमाग व वाणी सब मूक हो जाती है कि ओहो कैसा गुरु-शिष्य का संबंध?

❑ गुरुहरि योगीजी महाराज (बापा) जब गाँवों में विचरण करते तो बहुत परिश्रम उठाते....तब बापा की तबीयत व सुविधा का प.पू. काकाजी बहुत ध्यान रखते थे। एक बार धधूंका गाँव के मार्ग पर गाड़ी लेकर प.पू. काकाजी बापा को लेकर जा रहे थे, तब बापा ने स्वयं आगे से प.पू. काकाजी को कहा–'दादुभाई साहेब ! ज्यादा पधरामनी नहीं करनी है....हमें नीचे नहीं उतारना। कहीं सभा नहीं करनी.....तुम जल्दी गाड़ी निकाल लेना....मेरी तबीयत अच्छी नहीं, मैं थक गया हूँ।'

एक गाँव के चबूतरे पर हरिभक्त दर्शन के लिए खड़े थे। प.पू. काकाजी ने गाड़ी में से उतर कर विनम्रता से कहा 'बापा थक गए हैं इसलिए यहाँ से दर्शन कर लो। गाँव में उन्हें नहीं ले जायेंगे।' सामने तो सब दरबार खड़े थे। उन्होंने तो एकदम प.पू. काकाजी का अपमान करना शुरू कर दिया....गालियाँ देनी शुरु कर दी और बापा को बोले कि 'आप ऐसे ऐरे गैरे, मुफ्त के खाने वालों को साथ में क्यों रखते हो?' ऐसे शब्द उन्होंने प.पू. काकाजी के बारे में कहे और इतने में तो बापा ने दरवाजा खोल कर कहा कि–'दादुभाई भले ऐसा कहें, पर चलो मैं चलता हूँ, हम वहाँ सभा करेंगे।' पर उस वक्त भी प.पू. काकाजी के मुखारविन्द पर वही मस्ती कैफ ही। हम होवे तो ऐसा होने पर साथ ही कभी ना जायें। इससे भी अधिक गुरु को ही कितनी खरी-खोटी सुनायें। फिर तो बापा ने पधरामनी करी, सभा करी और अंत में बोले कि 'अब दादुभाई आभार मानेंगे' आश्चर्य की बात कि इतना अपमान होने के बाद भी ना कोई मायूसी ना कोई गुस्से की रेखा या स्पंदन मात्र भी हृदय में नहीं और प.पू. काकाजी ने तो महिमा का प्रवाह चालू किया–यह कैसी स्वरूपनिष्ठा ?

❑ पढ़े-लिखे 51 युवानों को साधु की दीक्षा दी तब भी प.पू. काकाजी का भयंकर अपमान हुआ....एक बार बाबरा गाँव के रोड पर योगी बापा छः गाड़ियाँ लेकर निकले। रास्ते में गुण्डे लोग चाकू आदि हथियार लेकर खड़े थे कि बापा की गाड़ी निकले और आज बराबर उन्हें ठीक कर देना है। ये बापा युवकों को साधु बनाते हैं। बापा की गाड़ी आई। उन्हें उन लोगों ने रोक कर कहा कि तुम लड़कों को बहका कर साधु बनाते हो ना? बापा ने जवाब दिया कि 'मैं साधु नहीं बनाता, दादुभाई बहकाते हैं'। उन लोगों ने बापा की गाड़ी जाने दी.... फिर प.पू. काकाजी की गाड़ी आई और उन लोगों ने मारपीट व तूफान किया। हम कल्पना करें कि हमारे गुरु ने यदि हमारे लिए ऐसा बर्ताव किया हो तो? यूँ कुछ भी मुश्किल काम हो वह बापा प.पू. काकाजी को ही सौंपे कि 'दादुभाई यह काम तुम्हें करना है और फिर जब विरोधी कुछ फरियाद लेकर आते तब बापा प.पू. काकाजी को कहते, 'दादुभाई ! दंडवत् करके माफी माँगो' और प.पू. काकाजी तुरन्त दण्डवत् करने लगते.....इस प्रकार आध्यात्मिक, समताभरी निर्दोष बुद्धि रखकर साधुता की चरमसीमा का दर्शन कराया.... धन्य गुरु को और धन्य ऐसी अनोखी–गुरुभक्ति अदा करने वाले सेवक को.....

हम सब कितने भाग्यशाली.....जो हमारे गुरु ही हमारे लिए रास्ता दिखा कर गये–तो हम सब को अब ऐसी आध्यात्मिक गुरुपूर्णिमा मनानी है कि हमें कुछ कहते हुए सोचना ना पड़े....गुरु हमारे मन-बुद्धिचित्त की भूमिकाओं पर शासन कर सके–वह हक सौंपना ही सच्चा गुरुपूजन है।

स्वामी की बातें

288. भगवान व इस साधु का जिसे ज्ञान हुआ है, उसे कुछ करना शेष रहा नहीं। वह तो यहाँ है तब भी अक्षरधाम में ही बैठा है। इसलिए पाँच माला ज्यादा या कम फिरेगी उसकी चिंता नहीं। वह तो सामर्थ्य के मुताबिक करना, लेकिन भगवान और इस साधु- इन दोनों को ही जीव में रखना और हमारा बड़प्पन साधन के बल से नहीं, बल्कि उपासना के बल से है। *प्र–5,21*

289. भगवान की आज्ञा से प्रवृत्ति में जुड़े हो तब उसमें बंध तो जायेगा, लेकिन आज्ञा पालने से प्रसन्नता मिलती है। वहाँ दृष्टांत दिया कि राजा की आज्ञा से सिपाही कुएँ में सात बार उतरा और भीगकर बाहर आया, फिर भी, राजा ने इनाम में गांव दिया। *प्र–5,22*

290. निवृत्ति में रहे तो इंद्रियों की शुद्धि होती है और जीव की भी शुद्धि होती है। ऐसी प्रवृत्ति मार्ग में होती नहीं। सो विषयों के भोग में से संकोच करना। *प्र–5,23*

291. प्रगट भगवान का संबंध होने से और उसे निर्दोष समझने से मोक्ष हो चुका है और दोष रहे हैं उन्हें टालने की कोशिश करें तो टलें, वर्ना देह रहे तब तक परेशानी रहेगी और भगवान का निश्चय है सो देह छोड़ने पर भगवान के धाम को पायेगा.... *प्र–5,24*

❑ ❑ ❑

व्रतोत्सवसूची

1.	दि.	30.5.93	बुधवार	देवशयनी एकादशी, निर्जला व्रत, चातुर्मास प्रारम्भ
2.	दि.	31.5.93	शनिवार	आषाढ़ी पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, व्यास पूजा
3.	दि.	1.6.93	गुरुवार	एकादशी, व्रत

PUBLISHED BY SADHU MUKUNDJIVANDAS FOR YOGI DIVINE SOCIETY,
A 103, Ashok vihar-III, Swaminarayan Marg, Kakaji Lane,
Delhi-110 052. (India) Tel. : 7229327, 7249327
Printed at R.P. Printers, Shahdara, Delhi-110 032